International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(3): 136-142

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(3): 136-142
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 27-03-2019
Accepted: 28-04-2019

सुरेश कुमार सैनी
शोधच्छात्र - संस्कृत विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय कोटा [राजस्थान], कोटा विश्वविद्यालय, राजस्थान, भारत

Correspondence
सुरेश कुमार सैनी
शोधच्छात्र - संस्कृत विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय कोटा [राजस्थान], कोटा विश्वविद्यालय, राजस्थान, भारत

आचार्यहरेकृष्णसतपथी कृत 'भारतायनम्' महाकाव्य का धार्मिक चेतना में योगदान

सुरेश कुमार सैनी

साहित्य की दृष्टि से अत्यंत उर्वराभूमि उत्कल राज्य में अनेक महाकवियों ने जन्म लिया है| उन महाकवियों में 'कविशतकम्', 'जननि', 'भारतायानम्' आदि कृतियों के प्रणेता, राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ तिरुपति [आ॰ प्र॰] के पूर्व कुलपति एवं 'कलिंगा सामजिक विज्ञान संस्थान [कीस] विश्वविद्यालय भुवनेश्वर [उड़ीसा] के वर्तमान कुलपति आचार्य हरेकृष्ण सतपथी अन्यतम हैं| उनके द्वारा रचित 'भारतायनम्' महाकाव्य भारतमाता के गौरव एवं भारतीय आध्यात्म के गुणगान से परिपूर्ण २१वीं सदी का सर्वोत्कृष्ट काव्य है | इस महाकाव्य में दश सर्गों में ६५९ पद्यों में निबद्ध है जिसमें भारतमातृभूमि के गौरव एवं भारतीय अध्यात्म से परिपूर्ण गौरव का चित्रण महाकवि ने किया है| इस प्रबन्ध में भारतभूमि के गौरवपूर्ण विश्ववन्द्य चरित्र महाकवि आचार्य हरेकृष्ण सतपथी ने प्रस्तुत किया है; जैसा की महाकाव्य की भूमिका में महाकवि ने उद्घोषित किया है -

> "आसतोर्जलधेस्तटात् हिमगिरिं यावन्मुदा विस्तृतं,
> नित्यं प्राकृतिकैश्च वैभवचयैर्नानाविधर्भूषितम् |
> ब्राह्मीपादपयोजमुग्धमधुपैर्विद्वद्भिरासेवितम्'
> अस्माकं प्रियभारतं विजयतां सत्यं शिवं सुन्दरम् ||"[1]

इस महाकाव्य के लिये आचार्य हरेकृष्ण सतपथी को वर्ष २०११ में केन्द्रीय साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है |[2]

1. भारतायनं – समर्पणम् पृष्ठ संख्या 1
2. www.sahity-akadamy.gov.in//listofawardwinnersinsanskritlanguage.

भारतायनम्' महाकाव्य के धार्मिक चेतना में योगदान का विवेचन करने से पूर्व हमें धर्म एवं धार्मिक चेतना आदि के विषय में भी जानना आवश्यक है |

"धारयते लोकम् इति धर्मः |"[2] इस व्युत्पत्ति के अनुसार "धृ धारणे" धातु से मन प्रत्यय के योग से धर्म शब्द की निष्पत्ति होती है |[3] 'चेतना' शब्द चित् धातु से भावार्थ में ल्युट एवं स्त्रीत्त्व की विवक्षा में टाप् प्रत्ययों के योग से निष्पन्न है | जिसका शाब्दिक अर्थ है ज्ञानमूलक मनोवृत्ति, बुद्धि अथवा समझ |[4] इस प्रकार 'धार्मिक चेतना" का अभिप्राय होता है "धर्म मूलक चेतना अथवा समझ|" 'भारतायनम्' महाकाव्य के प्रथम एवं द्वितीय सर्ग के अतिरिक्त तृतीयसर्ग से दशमसर्ग पर्यंत अष्ट सर्गों में धार्मिक चेतना के अनेक तत्त्व दृष्टिगोचर होतें है | तृतीय-चतुर्थ-पञ्चम-एवं षड सर्ग में श्रीजगन्नाथ पुरी का धार्मिक महत्त्व वर्णित है | "भारतनीलांचलमहिमवर्णनम्" शीर्षक तृतीय सर्ग में कुल ३७ पद्यों में महाकवि आचार्य हरेकृष्ण सतपथी ने भारतमातृभूमि की महिमा का वर्णन करते हुए पूण्य पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र [पुरी] का विस्तृत वर्णन किया है| साथ ही नीलमाधव प्रभु जगन्नाथ की महिमा का वर्णन किया है | पद्य संख्या १६ से २६ तक पुण्य पवित्र पुरी प्रदेश एवं प्रभु जगन्नाथ का महिमा मंडान कवि द्वारा किया काया है| समस्त तीर्थों में प्रसिद्ध पुरी तीर्थ में आनंत-संसार-भयार्तीहारक प्रभु जगन्नाथ स्वयं विराजते है| प्रभु की रहस्यमयी दारू-मूर्ति धर्म एवं दर्शन का समन्वित रूप है| भारत का यह पवित्र स्थल समस्त पृथ्वी पर पुण्यतम है| यज्ञों एवं तपों की इस भूमि पर पर जन्म लेना हमारा सौभाग्य है -

"प्रिय प्रयावः प्रथमं हि तत्स्थलं,
वसन्ति यत्रैव समस्त देवता |
तदेव साक्षात् पुरुषोत्तमाभिधं,
विराजते भारतधाम गौरवम् ||"[5]

पवित्र नीलांचल क्षेत्र में प्रवेश करते ही दूर से ही जगन्नाथ प्रभु के मंदिर पर शुशोभित चक्र के दर्शन होते है| यह सुनील सुदर्शन चक्र सभी दिशाओं से आत्माभिमुखी प्रतीत होता है जो भक्तों को दूर से ही आकर्षित करता है| भगवान पुरुषोत्तम का ययुध सुदर्शन समस्त गर्व का नाश एवं विनम्रता के रक्षण हेतु अहर्निश जाग्रतावस्था में रहता है | इस दिव्य चक्र को देखकर जगद्गुरु आदिशंकराचार्य भी मोहित हुए एवं कालांतर में रामानुजाचार्य नानकदेव आदि संत भी विमोहित हुए बिना नहीं रहे -

"तदैव दृष्ट्वा नतमस्तकोऽभवत्,
जगद्गुरुः शंकररूपशंकरः |
परे च रामानुजनानकादयः,
बभूविरे केवलमात्मविस्मृताः ||"[6]

पद्य संख्या २७ से राजा इन्द्रद्युम्न प्रसंग का प्रारंभ होता है | बहुभाग्य-भजन, नृपों में अतुलनीय, भक्तिवान राजा इन्द्रद्युम्न में विद्वानों के मुख से एक दिन प्रभु नीलमाधव की कथा सुनी | वह राजा भक्तिप्रचोदित मन से श्रीनीलमाधव की मनोहर दिव्य मूर्ति के दर्शनार्थ इन्द्रद्युम्न अपने अनुयायियों एवं सैनिकों के साथ पुण्यपुरुषोत्तम धाम आता है | स्वकीय पदवी के गर्व से गर्वित उस रजा के वहां पहुचने से पूर्व ही श्रीनीलमाधव की वह मनोहर मूर्ती वहां से अंतर्ध्यान हो गयी | यह देख वह राजा इन्द्रद्युम्न दुखी होकर सोचता है कि जीवन में मेरे द्वारा कृत अनेक दुष्कर्मों के कारण ही आज मुझे मेरे इष्ट के दर्शन नही हुए है -

3. पांडुरंग वामन काणे – धर्मशास्त्र का इतिहास भाग 2 पृष्ठ सं.११८
4. शब्दकल्पद्रुम – तृतीय भाग पृष्ठ सं. ७८
5. वा.शि.आप्टे –संस्कृत-हिंदी शब्दकोश पृष्ठ सं. ३७८
6. भारतायनम् – 3/16
7. भारतायनम् 3/26

"कृतं हि किं दुष्कृतमेव जीवने,
यतो न लब्धं हि ममेष्टदर्शनम् |
न वा स्वधर्मो विहितस्तत: फलं,
न लब्धमित्येव नृपो व्यचिन्तयत् ||"[7]

इस महान घोर करालकाल में दुखी ह्रदय राजा जब वही पर सो जाता है; तब राजा को स्वप्न में इष्टदेव के दर्शन होते है | वे राजा को समुद्र की लहरों के साथ प्रवाहित होकर आये दिव्य-दारु-खंड से अपने इष्ट के विग्रह-निर्माण का आदेश देते है | तब वह रजा अत्यन्त प्रसन्नता के साथ पवित्र नृसिंह-क्षेत्र में यज्ञ आदि का संपादन करके ईश्वर के प्रतीक दिव्य-दारु-खंड को लाने हेतु महोदधि तट की और प्रस्थान करता है -

"क्षेत्रे नृसिंहवसतौ परमे पवित्रे,
संपाद्य यज्ञमखिलं नृपतिश्च भक्त्या |
पुण्यं महोदधितटं प्रविवेश दारुं,
चानेतुम तत्भूद्भगवत्प्रतीकम् ||"[8]

"महोदधिमहिमवर्णनम्" नामक चतुर्थ सर्ग में प्रभु-विग्रह निर्माणार्थ दिव्य-दारुखंड को सागर तट पर लेने आये हुए राजा इन्द्रद्युम्न महोदधि को प्रणाम करतें है | विभिन्न रूपकों, उपमाओं आदि से सागर को प्रणाम करता हुआ उसकी प्रसंशा करता है | यह महोदधि समस्त देवताओं की शक्तियों से युक्त एवं महनीय तरंगों की राशि से युक्त है तथा लक्ष्मी का निवास स्थल तीर्थों का राजा है | विश्व-कल्याणार्थ अनेक ऋषि-मुनि महोदधि के पवित्र जल से पूजा-अर्चना करते है | सागर के तट पर स्थित रमणीय पुष्पों को सागर की पूजार्थ लोग चुनते है | अनेक पवित्र नदियाँ महोदधि के पवन चरणों का प्रक्षालन करती है|

महोदधि अनेक रत्न-आभूषणों को अपने गर्भ में संचित करके रखता है, एवं कालांतर में उन्हें संसार के लोगों के कल्याणार्थ पुन: संसार को अर्पित कर संसार का पोषण करता है | निलाद्रिशेखर विभु जगदीश्वर के दिव्यातिदिव्य दारुमय के स्पर्श से महोदधि भी भगवत्स्वरूप को प्राप्त हो गया है | इस महोदधि ने ही महाप्रलय के समाया मीन का रूप धर वेदों की रक्षा की | दारिद्रय जनित दुखों के नाश में दक्ष दिव्य-देहा लक्ष्मी महोदधि में भगवान श्रीहरि के साथ निवास करती है | जगत के परिरक्षणार्थ सागर का गर्भ मौक्तिकों, प्रवालों, मणियों एवं कांचन से युक्त है | विश्वमंगल-विधानार्थ समुन्द्रमंथन के समय अनन्त पीडाओं को सहकर लोकापोषण हेतु महोदधि ने अनेक शुभकारी वस्तुएं संसार को प्रदान की है | भक्तों द्वारा अर्पित अवातुओं को भी ग्रहण न करके पुन: उन्हें ही समर्पित करके महोदधि अपरिग्रह व्रत का पालन करता है -

"भक्तप्रदत्तमपपि वस्तुं न तद्गृहीत्वा,
संदर्शितं व्रतमहोऽपरिगृहणस्य |
त्येक्तेन तेन कुरुषे सततं हि भोगं,
हे त्यागमूर्त्तिर्जलधे ! तव सुप्रभातम् ||"[9]

पुरुषार्थ-चतुष्टयों धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का प्रत्यक्ष रूप महोदधि धर्म से अपने समस्त कर्मों का पालन करता है -

"धर्मप्रिया: सुमनस: मनसार्पितेन,
त्वपादपद्मयुगलं परमर्चयन्त: |
धर्मेण कर्म निखिलं परिपलयन्ति,
हे धर्मसंयमनिधे ! तव सुप्रभातम् ||"[10]

8. भारतायनम् 3/31
9. भारतायनम् 3/34
10. भारतायनम् 4/25
11. भारतायनम् 4/26
12. भारतायनम् 5/26

"सागर-समर्पणम्" शीर्षक पञ्चम सर्ग में महाकवि आचार्य हरेकृष्ण सतपथी ने स्व-हृदय के अंतर्भावों का वर्णन करते हुए इस जगत की नश्वरता का वर्णन किया है | कवि कहतें है कि सांसारिक माया-मोह ही दुःख के मूल कारण है; माया-मोह से रहित वनवासी सन्यासी लोग सदैव आनन्द से रहतें है समस्त पृथ्वी उनका घर होती है एवं समस्त वन्यजीव उनके बंधुजन होतें है | इस जगत में कोई किसी का मित्र नही है,सारे बंधन स्वार्थ के हेतु है, जब तक अस्थियों एवं मेद से युक्त यह देह रुचिकर प्रतीत होती है समस्त संसार में अनेक बंधुजन मिल जातें हैं | आयु व्यतीत हो जाने एवं स्वार्थपूर्ति हो जाने पर कोई किसी को नही पूछता -

"कलेवरं रक्तपलादिनिर्मितां,
विभाति यावत् रुचिरं मनोहरम् |
भवन्ति तावत्सुहृदः समे भवे,
वयोगते पृच्छति को जरातुरे ||"[11]

सांसारिक वासनाओं में परिबद्ध मनुष्य मरने के बाद पुनः-2 जन्म लेता रहता हैं एवं अनेक योनियों में भटकता रहता है | वास्तव में तो धरातल पर शयन करनेवाला, वल्कलवस्त्र धारण करने वाला एवं ज्ञानरूपी भोजन करनेवाला सन्यासी जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है | फल-पुष्प-पल्लवों से युक्त प्रकृति सबको आनन्द देती है, मनुष्य का शोक उसे अग्नि की तरह जलाने वाला है| जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है, इसलिए मनुष्य को शोक नही करना चाहिय्रे क्योंकि प्राणियों का जन्म ही मृत्यु का बीजारोपण है | मृत्यु शाश्वत सत्य है, किन्तु अज्ञान के अन्धकार में विमोहित मनुष्य समीपस्थ इस निगूढ़तत्त्व को नही जन पाता है | यह मनुष्य जन्म निरर्थक न हो इसलिए मनुष्य को धैर्यपूर्वक अपना कर्म करते रहना चाहिए क्योंकि प्रयोजन पूर्ण नही होने तक मनुष्य को बारम्बार जन्म लेना पड़ता है | बलपूर्वक प्रभु के चरणों का आश्रय प्राप्त कर लेने पर भी यदि शोक-जन्य पीड़ा का शमन न हो तो मनुष्य को धैर्य रखना चाहिए, क्योंकि राग-मोह के बंधनों से मुक्त होना अति-कठिन कार्य है और यही दुःख का मूल कारण है| इन मोह-पाशों से मुक्ति ही सुख का हेतु है | भगवान् दीनबंधु है, दीनानाथ हैं | वे सबकी रक्षा करतें हैं -

"यतो गजो नक्रधृतस्ततः प्रभुं,
गतिं पतिं न विपत्सु रक्षकम् |
भवाब्धिमध्ये पतिताश्च दुःखिताः,
कथं न कुर्मस्तव नाम्कीर्त्तनम् ||"[12]

"दारुमहोत्सवमंदिरनिर्माणम्" शीर्षक षष्ठसर्ग में महाकवि आचार्य हरेकृष्ण सतपथी ने कुल ४० पदयों में पवित्र दरुखंड से प्रभु-विग्रह निर्माण, पुरी मंदिर निर्माण, मूर्ति स्थापना एवं जगन्नाथ रथयात्रा की कथा का वर्णन किया है | राजा इन्द्रधुम्न अनेक प्रकार से स्तुति करके सागर की लहरों के साथ प्रवाहित होकर तट पर आये हुए पवित्र दरुखंड को 'रानी गुण्डिचा' के महल में लेकर आता है और अनेक यज्ञ का संपादन करता है | उस यज्ञ में राजा इन्द्रधुम्न ने समत देवों एवं ब्राह्मणों को आमंत्रित किया | देव-स्वरुप ब्राह्मणों के वैदिक-मंत्रोच्चारण से समस्त आकाश गुंजायमान एवं पवित्र हो गया| सज्जनों की सेवा को ही मनुष्य का परम-धर्म मानकर उस राजा इन्द्रधुम्न ने यज्ञ-संपादनार्थ आये हुए ब्राह्मणों की महती सेवा की एवं उन्हें मनोवांछित दान दिये -

"तेषां बुधानां महती हि सेवा,
कृता च राज्ञा महतादरेण |
दानं प्रदत्तञ्च मनोऽनुरूपं,
सतां हि पूजा मनुजस्य धर्मः ||"[13]

13. भारतायनम् 5/55
14. भारतायनम् 6/5

राजा इन्द्रधुम्न ने जगन्नाथ के एक भव्य मंदिर का निर्माण करवाया | मंदिर निर्माण के उपरांत राजा ने गुण्डिचा महल से प्रभु जगन्नाथ, भगवान बलभद्र एवं देवी सुभद्रा के दारू-विग्रहों को सुन्दर एवं विशाल रथों में बिठाकर पुरी मंदिर में स्थापित किया | तब ही से प्रतिवर्ष आषाढ़ माह में रथयात्रा का आयोजन किया जाता है -

"कदाऽऽषाढ़े मासे विजयविभवे भक्तजनता-

समावेसे रासे निहितमनसं घोषसरसम् |
रथे तं ह्यारूढ़ं भवभयहरं कान्तवपुषं,
जगन्नाथं दृष्ट्वा जननमिह मन्ये मधुमयम् ||"[14]

"द्वारिकाराधना" शीर्षक सप्तम सर्ग में आहत्य ३७ पद्यों में महाकवि आचार्य हरेकृष्ण सतपथी ने प्रसिद्ध चारधामों में अन्यतम तीर्थ द्वारिका एवं बद्रीनाथ के महात्म्य का भक्तिमय वर्णन किया गया है | पद्य संख्या १ से १८ तक द्वारिका तीर्थ के महात्म्य का वर्णन महाकवि ने किया है | जहाँ पर भगवान सोमनाथ ज्योतिर्लिंग के रूप में विराजतें है उस पवित्र भूमि पर भारत के पश्चिम दिशा में प्रसिद्ध धाम द्वारिका धाम स्थित है | भगवान वासुदेव श्रीकृष्ण ने जरासंध के आक्रमण के समय मथुरा को छोड़कर द्वारिका को अपनी राजधानी बनाया था | 'द्वारावती' नाम को सार्थक करते हुए द्वारिका नगरी के विशाल द्वार मन की विशालता के प्रतीक है | धरातल के धामों में धन्य एवं धार्मिक नगरों में अनन्य द्वारिका नगरी अरबसागर से जल में योग्संलग्न साधू के सामान शोभायमान है | कामप्रदा रुक्मिणी, मोक्षप्रदा केशवकान्ति एवं अर्थप्रदा सगरवेला से युक्त धर्मप्रदा द्वारिका नगरी धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की दात्री है -

"अभीष्टसिद्धिप्रदमादिवीजं,
संसारसृष्टेस्तमनादितत्त्वम् |
श्रीरुक्मिणीमानसपद्मसूर्यं,
श्रीद्वारिकाधीशमिहानमाव: ||"[15]

पद्य संख्या १९ से २२तक महाकवि आचार्य हरेकृष्ण सतपथी ने बद्रीनाथ की महिमा का वर्णन किया है | शांताकृति एवं कमनीय मूर्ति प्रभु बद्रीनाथ हिमालय पर लोकहितार्थ तपस्या करतें है | प्रकृति सोंदर्यों से युक्त हिमालय के आँचल में सुन्दर द्वारों से युक्त मंदिर में स्थित होकर प्रभु बद्रीनाथ तपस्वी के वेश में समाधिमग्न होकर संसार को त्याग, तपस्या एवं वात्सल्य का सन्देश देतें हैं | साधना के प्रत्यक्ष रूप प्रभु बद्रीनाथ के शुभ-आशीषों से समस्त विश्व सुख-शांति को प्राप्त करता है -

"हिमालयस्योपरि राजमान:,
तपश्चरन् लोकहिताय नित्यम् |
वन्दवहे श्रीविभुबद्रिनाथं,
प्रत्यक्षरूपं खलु साधानाया: ||"[16]

"काशीविलास" इत्याख्य अष्टम-सर्ग में कवि ने कुल ७६ पद्यों में काशीनाथ विश्वनाथ, विश्वनाथ-नगरी काशी एवं देवनदी गंगा का भक्तिमय वर्णन किया है | गंगा नदी की दुर्दशा के लिये धार्मिक आडम्बरों एवं स्वार्थपूर्ण मनोवृत्ति को उत्तरदायी मानते हुए कवि कहतें हैं कि गंगा नदी देवनदी है पृथ्वी पर किसी ने उसका खनन नही किया है | वह तो भागीरथ की साधना से धरती पर अवतरित हुई है | किन्तु आज न तो भागीरथ है और न ही भागीरथी साधना | इस कलियुग में धर्महीन एवं स्वार्थी तत्त्वों का बाहुल्य है - धर्म मनुष्य द्वारा धारण किया जाने वाला स्वभाव है | मनुष्य द्वारा धारणीय स्वाभाव 'धर्म' की वर्तमान कलियुग में

15. भारतायनम् – 6/36

16. भारतायनम् – 7/12
17. भारतायनम् – 7/35
18. भारतायनम् – 8/48

व्याख्या ही बदल गयी है | कलयुगी मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर धर्म से हीन हो गया है - सर्वे स्वार्थपरा कलौ पुनरहो धर्मेण हीना: जना: |" हम आस्था के नाम पर स्वार्थपूर्ति एवं बाह्याडम्बरों को धर्म की संज्ञा देते हैं| इस मनोवृत्ति की महाकवि ने कवि ने भर्त्सना की है -

"गंगा नाम पवित्रमस्ति नितरामुच्चार्य्यते केवलं,
लोकानां शवमेव सम्प्रति हरिश्चारद्रादिघाटोच्चये |
मात्रं ह्यधर्मितं विदाह्य च पुनःनिक्षिप्य तत्तज्जले,
नित्यं मोहवाशादुपार्जनपरा: स्वार्थे नियुक्ता: डमा: ||"[17]

हमारे देश में अनेक महापुरुषों ने मानवमंगल एवं आत्मोन्त्यर्थ अपना सकल जीवन निरंतर धर्मस्थापना एवं धर्मप्रचार हेतु समर्पित कर दिया | जगद्गुरु आदि-शंकर के उपरांत कामकोठी पीठ कांचीपुरम के ६८वें शंकराचार्य चंद्रशेखरेन्द्र सरस्वती "अष्टम" उनमे से एक है जिन्होंने सम्पूर्ण भारतभूमि की पैदल यात्रायें कर सनातन धर्म की पुनर्स्थापना में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया -

"वेदे तथा वैदिकधर्मतत्त्वे,
सचेतना: सन्तु समस्त लोक: |
इत्येव मत्वा शिवरात्रिकाले,
जयस्य यात्रां कृतवन्त एते ||"[18]

धर्म मनुष्य के सामाजिक आचरण को सकारात्मक रूप देता है | लोकमंगल की भावना से परिपूर्ण वैदिक धर्म के प्रति सभी को सचेतन रहने का आह्वान् भारतायनं महाकाव्य करता है | मनुष्य जिस भूमि पर जन्म लेता है उसकी सेवा करना, उसके सर्वांगीण विकास में अवदान देना एवं आवश्यकता पड़ने पर मातृभूमी की प्राणों के अर्पण से भी रक्षा करना सच्चे राष्ट्रभक्त का धर्म है; और सह्रदयजनों की धर्म में ही संस्थिति रहती है |

तीर्थवसति" शीर्षक दशम-सर्ग में महाकवि आचार्य हरेकृष्ण सतपथी ने कुल ५५ पद्यों मे पूर्व सर्गों में वर्णित भारतभूमि के तीर्थस्थलों के अतिरिक्त अन्य दक्षिण भारतीय तीर्थों मुख्यत: कर्णाटक एवं तिरुपति का वर्णन किया है | 'रामेश्वरम्-तीर्थ की महिमा का वर्णन करते हुए आचार्य सतपथी कहतें हैं कि लंका-प्रयाण के समय स्वयं प्रभु रामचंद्र ने यहाँ पर अपने पितरों की पूजा की थी तब से यह तीर्थ एक परिपूर्ण-तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है -

"लंकाप्रयाणसमये सह बन्धुवृन्दै:,
यत्र स्वयं हि कृतवान् प्रभुरामचंद्र: |
श्रध्दास्पदेन मनसा पितृतर्पणं तत्,
रामेश्वरं भवति तत्परिपूर्णतीर्थम् ||"[19]

स्वर्णभूमि कर्नाटक में स्थित "गोकाक-तीर्थ", 'सिद्धगंगा', 'उड्डुपी', 'श्रंगेरी', 'वृन्दावन', 'श्रीरंगपट्टम्', आदि कर्णाटक राज्य के प्रसिद्ध तीर्थ है | यह प्रदेश रामानंदाचार्य एवं मध्वाचार्य की भूमि है | इन दोनों का भारतीय दर्शन में अमूल्य योगदान है | मध्वाचार्य ने 'आत्मा-परमात्मा', 'जीव-ब्रह्मा', अथवा 'सृष्टि-सृष्टा' के की समानता से युक्त "तत्त्ववाद" अथवा "द्वैतवाद" का प्रतिपादन किया-

"मध्वाचार्यजनुर्विभूषिततनु: रामानुज: शंकर:,
तत्त्वं द्वैतविचारदर्शनपथेनाविष्कृतं पावनम्|"[20]

19. भारतायनम् – 9/41
20. भारतायनम् – 10/1
21. भारतायनम् – 10/13
22. भारतायनम् – 10/34

तिरुपति तीर्थ का वर्णन करते हुए कवि कहतें हैं कि तिरुमला के समान पावन तीर्थ भूतल पर अन्यत्र कहीं भी नहीं है; सप्तगिरि पर स्थित विशाल मंदिर में शेषनाग के स्वामी विष्णु-अवतार प्रभु विराजतें हैं रामानंदाचार्य ने सप्तगिरि पर्वत पर तपस्या कर स्वप्न में भगवान वेंकटेश के दर्शन किये एवं परम गति को प्राप्त किया -

रामानुजोनुपमभक्ताग्रगण्य:,
प्रज्ञावतार इति ते शरणं प्रपन्न: |
ख्यातोऽभवत् हि शरणागतितत्त्ववेत्ता,
श्रीवेंकटेश ! भगवन् शरणं प्रपद्ये ||"[21]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि आचार्य हरेकृष्ण सतपथी कृत 'भारतायनम्' महाकाव्य भारतभूमि के धार्मिक गौरव का उदात चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है | इस प्रबंध में समस्त भारतीय तीर्थों का महात्म्य प्रस्तुत करता है | इसमें जगन्नाथ पुरी एवं प्रभु जगन्नाथ का विस्तृत विवेचन कवि ने प्रस्तुत किया है | साथ ही द्वारिका, बद्रीनाथ, काशी आदि उत्तर-भारतीय तीर्थों एवं दक्षिण भारत के समस्त महत्त्वपूर्ण तीर्थों का धार्मिक दृष्टि से कवि ने विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है | साथ ही कवि ने धार्मिक आडम्बरों एवं साम्प्रदायिकता की भावना की कड़ी निंदा की है | इस प्रकार 'भारतायनम्' महाकाव्य का भारतीय धार्मिक चेतना में महत्त्वपूर्ण योगदान है |

सन्दर्भ एवं सहायक ग्रन्थ सूची

1. भारतायनं - समर्पणम् पृष्ठ संख्या 1 विद्यापीठ प्रकासन तिरुपति २००८
2. www.sahity-akadamy.gov.in//listofawardwinnersinsanskritlanguage
3. पांडुरंग वामन काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास भाग 2 पृष्ठ सं.११८ मो.बना. वाराणसी २००३
4. शब्दकल्पद्रुम - तृतीय भाग पृष्ठ सं. ७८ राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान न.दि. प्र. २००५
5. वा.शि.आप्टे -संस्कृत-हिंदी शब्दकोश पृष्ठ सं. ३७८ चौखम्बा प्र. वाराणसी २००६
6. भारतायनम् - 3/16
7. भारतायनम् - 3/26
8. भारतायनम् - 3/31
9. भारतायनम् - 3/34
10. भारतायनम् - 4/25
11. भारतायनम् - 4/26
12. भारतायनम् - 5/26
13. भारतायनम् - 5/55
14. भारतायनम् - 6/5
15. भारतायनम् - 6/36
16. भारतायनम् - 7/12
17. भारतायनम् - 7/35
18. भारतायनम् - 8/48
19. भारतायनम् - 9/41
20. भारतायनम् - 10/1
21. भारतायनम् - 10/13
22. भारतायनम् - 10/34